

## २. सांख्ययोग

संजय बोले — इस तरह करुणा से व्याप्त, आंसू भरे, व्याकुल नेत्रों वाले, शोकयुक्त अर्जुन से भगवान कृष्ण ने कहा. (२.०१)

श्रीभगवान बोले— हे अर्जुन, इस विषम अवसर पर तुम्हें यह कायरता कैसे प्राप्त हुई? यह श्रेष्ठ मनुष्यों के आचरण के विपरीत है तथा यह न तो स्वर्ग प्राप्ति का साधन है और न कीर्ति देने वाला ही है. (२.०२)

इसलिए हे अर्जुन, तुम कायर मत बनो. यह तुम्हें शोभा नहीं देता. हे शत्रुओं को मारने वाले अर्जुन, तुम अपने मन की इस दुर्बलता को त्यागकर युद्ध करो. (२.०३)

अर्जुन बोले— हे मधुसूदन, मैं इस रणभूमि में भीष्म और द्रोण के विरुद्ध बाणों से कैसे युद्ध करूँ? हे अरिसूदन, वे दोनों ही पूजनीय हैं. (२.०४)

इन महानुभाव गुरुजनों को मारने से अच्छा इस लोक में भिक्षा का अन्न खाना है, क्योंकि गुरुजनों को मारकर तो इस लोक में उनके रक्त से सने हुए अर्थ और कामरूपी भोगों को ही तो भोगूंगा. (२.०५)

और हम यह भी नहीं जानते कि हम लोगों के लिए (युद्ध करना या न करना, इन दोनों में) कौन-सा काम अच्छा है. अथवा यह भी नहीं जानते कि हम जीतेंगे या वे जीतेंगे. जिन्हें मारकर हम जीना भी नहीं चाहते, वे ही धृतराष्ट्र के पुत्र हमारे सामने खड़े हैं. (२.०६)

इसलिए करुणापूर्ण और कर्तव्य पथ से भ्रमित, मैं, आपसे पूछता हूँ कि मेरे लिए जो निश्चय ही कल्याणकारी हो उसे आप कृपया कहिए. मैं आपका शिष्य हूँ, शरण में आये मुझको आप शिक्षा दीजिए. (२.०७)

पृथ्वी पर निष्कण्टक समृद्ध राज्य तथा देवताओं का स्वामित्व प्राप्तकर भी मैं ऐसा कुछ नहीं देखता हूँ, जिससे हमारे इन्द्रियों को सुखाने वाला शोक दूर हो सके. (२.०८)

संजय बोले— हे राजन्, निद्रा को जीतने वाला, अर्जुन, अन्तर्यामी श्रीकृष्ण भगवान से "मैं युद्ध नहीं करूँगा" कहकर चुप हो गया. (२.०९)

हे भरतवंशी (धृतराष्ट्र) दोनों सेनाओं के बीच में उस शोकयुक्त अर्जुन को अन्तर्यामी श्रीकृष्ण हंसते हुए-से ये वचन बोले. (२.१०)

श्रीभगवान बोले— हे अर्जुन, तुम ज्ञानियों की तरह बातें करते हो, लेकिन जिनके लिए शोक नहीं करना चाहिए, उनके लिए शोक करते हो. ज्ञानी मृत या जीवित किसी के लिए भी शोक नहीं करते. (२.११)

ऐसा नहीं है कि मैं किसी समय नहीं था, अथवा तुम नहीं थे या ये राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे. (२.१२)

जैसे इसी जीवन में जीवात्मा बाल, युवा और वृद्ध शरीर प्राप्त करता है, वैसे ही जीवात्मा मृत्यु के बाद दूसरा शरीर प्राप्त करता है. इसलिए धीर मनुष्य को मृत्यु से घबराना नहीं चाहिए. (१५.०८ भी देखें) (२.१३)

हे अर्जुन, इन्द्रियों के विषयों से संयोग के कारण होने वाले सर्दी-गर्मी और सुख-दुःख क्षणभंगुर और अनित्य हैं, इसलिए हे अर्जुन, तुम उसको सहन करो. (२.१४)

हे पुरुषश्रेष्ठ, दुःख और सुख में समान भाव से रहने वाले जिस धीर मनुष्य को इन्द्रियों के विषय व्याकुल नहीं कर पाते, वह मोक्ष का अधिकारी होता है. (२.१५)

असत् वस्तु का भाव नहीं होता है और सत् का अभाव नहीं होता है. तत्त्वदर्शी मनुष्य (असत् और सत्) दोनों को तत्त्व से जानते हैं. (२.१६)

उस अविनाशी तत्त्व को जानो, जिससे यह सारा जगत व्याप्त है, इस अविनाशी का नाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है. (२.१७)

इस अविनाशी, असीम और नित्य जीवात्मा के ये सब शरीर नाशवान कहे गये हैं, इसलिए हे भरतवंशी अर्जुन, तुम युद्ध करो. (२.१८)

जो इस आत्मा को मारने वाला या मरने वाला मानते हैं, वे दोनों ही नासमझ हैं, क्योंकि आत्मा न किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जा सकता है. (कठो.उ. २.१९ में एक समानान्तर श्लोक है) (२.१९)

आत्मा कभी न जन्म लेता है और न मरता ही है. आत्मा का होना फिर न होना नहीं होता है. आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है. शरीर के नाश होने पर इसका नाश नहीं होता. (कठो.उ. २.१८ भी देखें) (२.२०)

हे पार्थ, जो मनुष्य आत्मा को अविनाशी, नित्य, जन्मरहित और अव्यय जानता है, वह कैसे किसको मरवायेगा और कैसे किसको मारेगा? (२.२१)

जैसे मनुष्य अपने पुराने वस्त्रों को उतारकर दूसरे नये वस्त्र धारण करता है, वैसे ही जीव मृत्यु के बाद अपने पुराने शरीर को त्यागकर नया शरीर प्राप्त करता है. (२.२२)

शस्त्र इस आत्मा को काट नहीं सकते, अग्नि इसको जला नहीं सकती, जल इसको गीला नहीं कर सकता और वायु इसे सुखा नहीं सकती; क्योंकि आत्मा अछेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है. आत्मा नित्य, सर्वगत, स्थिर, अचल और सनातन है. (२.२३-२४)

यह आत्मा अव्यक्त, अचिन्त्य और निर्विकार कहा जाता है. अतः आत्मा को ऐसा जानकर तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए. (२.२५)

हे महाबाहो, यदि तुम शरीर में रहने वाला जीवात्मा को नित्य पैदा होने वाला तथा मरने वाला भी मानो, तो भी तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए; क्योंकि जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है और मरने वाले का जन्म निश्चित है. अतः जो अटल है, उसके विषय में तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए. (२.२६-२७)

हे अर्जुन, सभी प्राणी जन्म से पहले अप्रकट थे और मृत्यु के बाद फिर अप्रकट हो जायेंगे, केवल (जन्म और मृत्यु के) बीच में प्रकट दीखते हैं; फिर इसमें शोक करने की क्या बात है? (२.२८)

कोई इस आत्मा को आश्चर्य की तरह देखता है, कोई इसका आश्चर्य की तरह वर्णन करता है, कोई इसे आश्चर्य की तरह सुनता है और कोई इसके बारे में सुनकर भी नहीं समझ पाता है. (कठो.उ. २.०७ भी देखें) (२.२९)

हे अर्जुन, सबके शरीर में रहने वाला यह आत्मा सदा अवध्य है, इसलिए किसी भी प्राणी के लिए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए. (२.३०)

और अपने स्वधर्म की दृष्टि से भी तुम्हें अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होना चाहिए, क्योंकि क्षत्रिय के लिए धर्मयुद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्म नहीं है. (२.३१)

हे पृथानन्दन, अपने आप प्राप्त हुआ युद्ध स्वर्ग के खुले हुए द्वार जैसा है, जो सौभाग्यशाली क्षत्रियों को ही प्राप्त होता है. (२.३२)

और यदि तुम इस धर्मयुद्ध को नहीं करोगे, तब अपने स्वधर्म और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगे. (२.३३)

तथा सब लोग बहुत दिनों तक तुम्हारी अपकीर्ति की चर्चा करेंगे. सम्मानित व्यक्ति के लिए अपमान मृत्यु से भी बढ़कर है. (२.३४)

महारथी लोग तुम्हें डरकर युद्ध से भागा हुआ मानेंगे और जिनके लिए तुम बहुत माननीय हो, उनकी दृष्टि से तुम नीचे गिर जाओगे. (२.३५)

तुम्हारे वैरी लोग तुम्हारी सामर्थ्य की निन्दा करते हुए तुम्हारी बहुत बुराई करेंगे. तुम्हारे लिए इससे अधिक दुःखदायी और क्या होगा? (२.३६)

युद्ध में मरकर तुम स्वर्ग जाओगे या विजयी होकर पृथ्वी का राज्य भोगोगे; इसलिए हे कौन्तेय, तुम युद्ध के लिए निश्चय करके खड़े हो जाओ. (२.३७)

सुख-दुःख, लाभ-हानि और जीत-हार की चिन्ता न करके मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार कर्तव्य-कर्म करना चाहिए. ऐसे भाव से कर्म करने पर मनुष्य को पाप (अर्थात् कर्म का बन्धन) नहीं लगता. (२.३८)

हे पार्थ, मैंने सांख्यमत का यह ज्ञान तुम से कहा, अब कर्मयोग का विषय सुनो, जिस ज्ञान से युक्त होकर तुम कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाओगे. (२.३९)

कर्मयोग में आरम्भ अर्थात् बीज का नाश ही नहीं होता तथा उल्टा फल भी नहीं मिलता है. इस निष्काम कर्मयोगरूपी धर्म का थोड़ा-सा अभ्यास भी (जन्म-मरणरूपी) महान् भय से रक्षा करता है. (२.४०)

हे अर्जुन, कर्मयोगी केवल ईश्वरप्राप्ति का ही दृढ़ निश्चय करता है; परन्तु सकाम मनुष्यों की इच्छायें अनेक और अनन्त होती हैं. (२.४१)

हे पार्थ, सकामी अविवेकीजन, जिन्हें वेद के मधुर संगीतमयी वाणी से प्रेम है, (वेद को यथार्थ रूप से नहीं समझने के कारण) ऐसा समझते हैं कि वेद में भोगों के सिवा और कुछ है ही नहीं. (२.४२)

वे कामनाओं से युक्त, स्वर्ग को ही श्रेष्ठ मानने वाले, भोग और धन को प्राप्त कराने वाली अनेक धार्मिक संस्कारों को बताते हैं, जो पुनर्जन्मरूपी कर्मफल को देने वाली होती है. (कठो.उ. २. ०५, ईशा.उ. ०९ भी देखें) (२.४३)

भोग और ऐश्वर्य ने जिनका चित्त हर लिया गया है, ऐसे व्यक्ति के अन्तःकरण में भगवत् प्राप्ति का दृढ़ निश्चय नहीं होता है और वे परमात्मा का ध्यान नहीं कर सकते हैं. (२.४४)

हे अर्जुन, वेदों (के कर्मकाण्ड) का विषय प्रकृति के तीन गुणों से सम्बन्धित है; तुम त्रिगुणातीत, निर्द्वन्द्व, परमात्मा में स्थित, योगक्षेम न चाहने वाले और आत्मपरायण बनो. (२.४५)

ब्रह्म को तत्त्व से जानने वालों के लिए वेदों की उतनी ही आवश्यकता रहती है, जितनी महान् सरोवर के प्राप्त होनेपर एक छोटे जलाशय की. (२.४६)

केवल कर्म करना ही मनुष्य के वश में है, कर्मफल नहीं. इसलिए तुम कर्मफल की आसक्ति में न फंसो तथा अपने कर्म का त्याग भी न करो. (२.४७)

हे धनंजय, परमात्मा के ध्यान और चिन्तन में स्थित होकर, सभी प्रकार की आसक्तियों को त्यागकर, तथा सफलता और असफलता में सम होकर, अपने कर्तव्यकर्मों का भलीभांति पालन करो. मन का समत्व भाव में रहना ही योग कहलाता है. (२.४८)

कर्मयोग से सकामकर्म अत्यन्त निकृष्ट है; अतः हे अर्जुन, तुम कर्मयोगी बनो, क्योंकि फल की इच्छा रखने वालों को (असफलता का भय तथा) दुःख होता है. (२.४९)

कर्मफल की आसक्ति त्यागकर कर्म करने वाला निष्काम कर्मयोगी इसी जीवन में पाप और पुण्य से मुक्त हो जाता है, इसलिए तुम निष्काम कर्मयोगी बनो. (फल की आसक्ति से असफलता का भय होता है, जिसके कारण कर्म अच्छी तरह नहीं हो पाता है.) निष्काम कर्मयोग को ही कुशलता पूर्वक कर्म करना कहते हैं. (२.५०)

ज्ञानी कर्मयोगीजन कर्मफल की आसक्ति को त्यागने के कारण जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं तथा परम शान्ति को प्राप्त करते हैं. (२.५१)

जब तुम्हारी बुद्धि मोहरूपी दलदल को पार कर जायगी, उस समय तुम शास्त्र से सुने हुए तथा सुनने योग्य वस्तुओं से भी वैराग्य प्राप्त करोगे. (२.५२)

जब अनेक प्रकार के प्रवचनों को सुनने से विचलित हुई तुम्हारी बुद्धि परमात्मा के स्वरूप में निश्चल रूप से स्थिर हो जायगी, उस समय तुम समाधि में परमात्मा से युक्त हो जाओगे. (२.५३)

अर्जुन बोले— हे केशव, समाधि प्राप्त, स्थिर बुद्धि वाले अर्थात् स्थितप्रज्ञ मनुष्य का क्या लक्षण है? स्थिर बुद्धि वाला मनुष्य कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है. (२.५४)

श्रीभगवान् बोले— हे पार्थ, जिस समय साधक अपने मन की सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्णरूप से त्याग देता है और आत्मा में आत्मानन्द से ही सन्तुष्ट रहता है, उस समय वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है. (२.५५)

दुःख से जिसका मन उद्विग्न नहीं होता, सुख की जिसकी आकांक्षा नहीं होती तथा जिसके मन से राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थितप्रज्ञ कहा जाता है. (२.५६)

जिसे किसी भी वस्तु में आसक्ति न हो, जो शुभ को प्राप्तकर प्रसन्न न हो और अशुभ से द्वेष न करे, उसकी बुद्धि स्थिर है. (२.५७)

जब साधक सब ओर से अपनी इन्द्रियों को विषयों से इस तरह हटा ले जैसे कछुआ (विपत्ति के समय अपनी रक्षा के लिए) अपने अंगों को समेट लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर समझनी चाहिए. (२.५८)

इन्द्रियों को विषयों से हटाने वाले मनुष्य से विषयों की इच्छा तो हट भी जाती है, परन्तु विषयों की आसक्ति दूर नहीं होती. परमात्मा के स्वरूप को (तारतम्य विद्या द्वारा) भलीभांति समझकर स्थितप्रज्ञ मनुष्य (विषयों की) आसक्ति से भी दूर हो जाता है. (२.५९)

हे कुन्तीनन्दन, संयम का प्रयत्न करते हुए ज्ञानी मनुष्य के मन को भी चंचल इन्द्रियां बलपूर्वक हर लेती हैं. (२.६०)

इसलिए साधक अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके मुझ में श्रद्धापूर्वक ध्यान लगाकर बैठे; क्योंकि जिसकी इन्द्रियां वश में होती हैं, उसी की बुद्धि स्थिर होती है. (२.६१)

विषयों का चिन्तन करने से विषयों में आसक्ति होती है, आसक्ति से (विषयों के सेवन करने की) इच्छा उत्पन्न होती है और इच्छा (पूरी नहीं होने) से क्रोध होता है. (२.६२)

क्रोध से सम्मोह अर्थात् अविवेक उत्पन्न होता है. सम्मोह से मन भ्रष्ट हो जाता है. मन भ्रष्ट होने पर बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि का नाश होने से मनुष्य का पतन होता है. (२.६३)

रागद्वेष से रहित संयमी साधक अपने वश में की हुई इन्द्रियों द्वारा विषयों को भोगता हुआ शान्ति प्राप्त करता है. (२.६४)

शान्ति से सभी दुःखों का अन्त हो जाता है और शान्तचित्त मनुष्य की बुद्धि शीघ्र ही स्थिर होकर परमात्मा से युक्त हो जाती है. (२.६५)

(ईश्वर से) अयुक्त मनुष्य के अन्तःकरण में न ईश्वर का ज्ञान होता है, न ईश्वर की भावना ही. भावनाहीन मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती और अज्ञान मनुष्य को सुख कहाँ? (२.६६)

जैसे जल में तैरती नाव को तूफान उसे अपने लक्ष्य से दूर ढकेल देता है, वैसे ही इन्द्रिय-सुख मनुष्य की बुद्धि को गलत रास्ते की ओर ले जाता है. (२.६७)

इसलिए हे अर्जुन, जिसकी इन्द्रियां सर्वथा विषयों के वश में नहीं होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर रहती है. (२.६८)

सब प्राणियों के लिए जो रात्रि है, उसमें संयमी मनुष्य जागा रहता है; और जब साधारण मनुष्य जागते हैं, तत्त्वदर्शी मुनि के लिए वह रात्रि के समान होता है. (२.६९)

जैसे सभी नदियों के जल समुद्र को बिना विचलित करते हुए परिपूर्ण समुद्र में समा जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस संयमी मनुष्य में विकार उत्पन्न किये बिना समा जाते हैं, वह मनुष्य शान्ति प्राप्त करता है, न कि भोगों की कामना करने वाला. (२.७०)

जो मनुष्य सब कामनाओं को त्यागकर इच्छारहित, ममतारहित तथा अहंकार रहित होकर विचरण करता है, वही शान्ति प्राप्त करता है. (२.७१)

हे पार्थ, यही ब्राह्मी स्थिति है, जिसे प्राप्त करने के बाद मनुष्य मोहित नहीं होता. अन्तसमय में भी इस निष्ठा में स्थित होकर मनुष्य ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त करता है. (२.७२)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे  
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥